डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

व्यंग्य

उमरावनगर में कुछ दिन

श्रीलाल शुक्ल

बकरी, मुर्गी, और फटी कमीजें

बस में जहाँ मैं बैठा था, वहाँ बकरी न थी; मेरे पास बैठे आदमी की गोद में सिर्फ मुर्गी थी। बकरियाँ पीछे थी। उस भीड़-भक्कड़ में अगर कहीं कोई बकरी का बच्चा आदमी की गोद में था या कोई बकरी आदमी के गोद में घुटने पर थी तो कुछ ऐसे आदमी थे जिनके पाँव बकरी के पेट के नीचे या पीठ के ऊपर थे और पीठ बस की पिछली दीवार से चिपकी थी। उनके सिर कहाँ थे, कहना मुश्किल है क्योंकि उनसे हाथ-दो-हाथ ऊपर भी कई सिर दिख रहे थे।

बस के रुकने पर समझने में देर नहीं लगी कि यहाँ उतरने में, चढ़ने के मुकाबले ज्यादा जीवट की जरूरत होगी। पर मेरा मुर्गीवाला साथी मुझसे ज्यादा उतावला था। अभिमन्यु की तरह भीड़ का चक्रव्यूह तोड़ता हुआ जब वह आगे बढ़ा तो मैं भी उसके कुर्ते से झूलता हुआ वहाँ तक पहुँच गया जहाँ दरवाजा होना चाहिए और उसके नीचे कूदते ही मैं भी उसी के साथ जमीन पर चू पड़ा। मेरे हाथ से झूलती अटैची किसी की टाँगो में फँसी होगी क्योंकि मेरे पीछे जो मुसाफिर कंधे के बल जमीन पर आया, उसकी टाँग आसमान में थी और दूसरी की धोती मेरी अटैची के कुंडे से उलझी थी। मेरे मुर्गी वाले साथी का कुर्ता पीछे से चीथड़ा बन चुका था पर वह इससे बिलकुल बेखबर था। उसे देख कर मुझे खबर हुई कि मैं भी अपनी कमीज के मामले में बेखबर हूँ, उसका कंधा अपनी सीलन छोड़ कर पीठ पर झूल गया था।

सड़क पर जहाँ बस रुकी थी उसके किनारे एक दवाखाना था जिस पर किन्हीं डा. अंसारी का नाम लिखा था। विज्ञापन-पट्टी पर ए.ए.यू.पी., पी.यम.पी., यम.डी. जैसी डिग्रियाँ लिखी थीं। यम.डी. से मेरा मन मुदित हो गया क्योंकि यह डॉक्टरों के खिलाफ इस इलजाम का जवाब था कि ऊँची डिग्री लेने के बाद वे शहर छोड़ कर देहात नहीं जाना चाहते। पर पट्टी पर दुबारा निगाह पड़ते ही मैंने देखा, यम.डी. के नीचे कोष्ठकों के भीतर उर्दू, यानी फारसी लिपि में लिखा है, 'मैनेजिंग डायरेक्टर, अंसारी क्लिनीक'। यह तो हुआ यम.डी.। अब मैंने ए.ए.यू.पी. और पी.यम.पी. के तिलिस्म को तोड़ना चाहा। पी.यम.पी. का गुर आसान था : प्राइवेट मेडिकल प्रैक्टिशनर। ए.ए.यू.पी. का गुर दूसरे दिन पकड़ में आया।
दवाखाने में एक ऊँघता हुआ बुड्ढा, हजारों मक्खियाँ। उसके सामने, सड़क के किनारे दो तख्तों पर छः-सात लोग भिन्न-भिन्न आसनों में बैठे बात करते हुए; पर एक भी आसन ऐसा नहीं जिससे जल्दी उठने का आभास हो रहा हो। जहाँ तक बात की बात है, बात सिर्फ एक आदमी कर रहा था, बाकी सिर्फ उसकी बात सुन रहे थे।

इकबाल मियाँ

मुझे पता नहीं था कि मेरे अध्यापक मित्र कहाँ रहते हैं। उनका पता पूछने के लिए मुझे यहाँ रुकना पड़ा। पर यहाँ देश की दुर्दशा पर बहस चल रही थी। जैसा कि होना चाहिए, देश के सामने व्यक्ति और खास तौर से मुझ-जैसे व्यक्ति पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

'...तुम कहते हो कि देश को नेताओं ने चौपट किया है। सरासर गलत! सारा देश तो बाबुओं के हाथ में है। पूरा बाबू-राज है। बाबू जैसा चाहता है, वैसा ही होता है।'

बात में कोई मौलिकता नहीं थी, फिर भी शायद मेरा सिर अनजाने ही इसके अनुमोदन में हिल गया। जवाब में उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मुझे देखा, गोया मुझे सनद दी कि मैं भुनगा नहीं, उन जैसा नहीं तो कम-से-कम दूसरों ही जैसा इनसान हूँ। फरमाया, 'देखिए न, इसी छब्बीस जनवरी की बात है। दिल्ली के किसी बाबू की करामात देखिए। छब्बीस जनवरी को छुट्टी होती है। मगर उस कंबख्त ने छब्बीस जनवरी को उठा कर ऐन इतवार के दिन गिरा दिया। गरीबों की एक दिन की छुट्टी मारी गई।'

बात कुछ महीन किस्म की थी। लोग समझने की कोशिश करने लगे। उन्होंने फिर फरमाया 'मिनिस्टर को पता भी न चला होगा।'

एक आदमी ने ओंठ हिला कर पहले कुछ कहने की कोशिश की, फिर कहा, 'मगर इकबाल साहब, कौन-सी तारीख किस दिन पड़ेगी, यह बाबू या मिनिस्टर थोड़े ही तय करता है?'

'फिर कौन तय करता है?'

कह कर शायद अनुमोदन के लिए, उन्होंने फिर मेरी ओर अपनी नजर उठाई। उनका श्रोता-समुदाय निरुत्तर हो चुका था। तब मैंने अपने मित्र के घर का पता पूछा।

वे लगभग साठ साल के होंगे। मोटे बदन पर लंबा कुर्ता और तहमद। सिर पर चौकोर टोपी। नाक के कोने पर एक बड़ा-सा काला मस्सा, जो बड़ी-बड़ी आँखों के नीचे बस कर पूरे चेहरे को समुद्री डाकुओं जैसा खूँखार बनाता था। यही, जब वे आँखे मूँद लेते होंगे, उनके चेहरे की ध्यान-मुद्रा को और भी गहनता देता होगा; धार्मिक भाषणों को मार्मिक बनाने में सहायता करता होगा।

मित्र ने कहा :

'अच्छा हुआ यहाँ आते ही तुम्हारी इकबाल साहब से मुलाकात हो गई। यहाँ के सबसे रईस आदमी हैं। काफी समझदार भी। पिछले चुनाव में सत्ताधारी पार्टी का टिकट भी मिल गया था। जीतते-जीतते बचे!'

'समझदारी का सबूत तो पहली मुलाकात में ही उन्होंने दे दिया। कहते हैं कि कौन तारीख किस दिन पड़ेगी यह बात दिल्ली के किसी दफ्तर का बाबू तय करता है।'

मित्र ने भौहें सिकोड़ कर कुछ सोचा, बोले 'तो तुम्हीं बताओ यह कौन तय करता है?'

झटका लगा, पर जल्दी ही सँभल गया। मैंने समझाया, 'यह सब तो मिस्टर गणेशन तय करते हैं।'

'कौन मिस्टर गणेशन?'

'तुमने अखबार में नहीं पढ़ा? वही जिन्होंने हाल ही में अपनी बेवा की बहन से शादी की है।'

वह हमेशा से ऐसे ही हैं। दोनों जोर से हँसे, वैसे जोड़ बराबर पर नहीं छूटा था, प्वाइंट्स पर मैं ही जीत रहा था।

'दरअसल, इकबाल मियाँ की हालत विशेषज्ञों-जैसी है। अपने विषय को छोड़ कर उन्हें कई विषयों का क ख ग तक नहीं आता...'

मित्र का ठिकाना सड़क से लगे हुए इस मकान की दूसरी मंजिल पर था। दो छोटे कमरे थे, छत के दूसरे किनारे एक छोटी कोठरी, जिसमें रसोईघर था। दूसरी तरफ खुले में दीवारें घेर कर नहाने का प्रबंध; उसी के दूसरे हिस्से में

एक अचंभा था - साफ-सुथरा शौचालय, फ्लश के लिए भले ही बाल्टी का प्रयोग होता हो। नहाने वाले हिस्से में हैंडपंप लगा था। हैंडिल सँभाल कर चलाना पड़ता था क्योंकि वह खुरदरी दीवार से रगड़ खाता था।

हैंडपंप चलाते वक्त मैं अपनी उँगलियों को दीवार से रगड़ कर जख्मी बना चुका था। उन पर डिटॉल लगा कर, रसोईघर के दरवाजे पर खड़े-खड़े जहाँ खाल छिल गई थी वहाँ की जलन का आनंद ले रहा था। मित्र चाय के लिए स्टोव जला रहे थे, इकबाल मियाँ की गौरव-गाथा सुना रहे थे :

'विशेषज्ञों के साथ अक्सर ऐसा होता है। अपने ही को लो। तुम ग्रामीण अर्थशास्त्र के माहिर हो। अब अगर तुमसे कोई भौतिक विज्ञान की किसी गुत्थी पर बात करने लगे तो तुम भी इकबाल मियाँ-जैसी चूक कर सकते हो। है कि नहीं?'

'है। पर इकबाल मियाँ विशेषज्ञ काहे के हैं?'

'उन्हें भी, क्या कहा जाए - एक तरह से ग्रामीण अर्थशास्त्र का ही विशेषज्ञ कह लो। खास तौर से जंगलों की कटान और जंगली लकड़ी के उपयोग के बारे में उन-जैसा माहिर इधर कोई नहीं है।'

'तुम्हारा मतलब पर्यावरण-सुरक्षा और वानिकी से है?'

'मुझे पता नहीं ये क्या है,' मित्र बोले, 'पर इनका मतलब चोरी और उठाईगिरी हो तो तुम्हारी बात सही होनी चाहिए।'

यहाँ ऊपर की मंजिल तक पहुँचने के लिए सड़क से ढाई फुट चौड़ी गली पार करके इमारत के पिछवाड़े से एक जीना चढ़ना होता है। यह लंबाकार सँकरा जीना सरग की नसेनी-जैसा है, जिस पर दीवार से बँधी हुई एक चीकट रस्सी के सहारे झूल-झूल कर चढ़ा जाता है। चढ़ते वक्त अगर किसी सीढ़ी पर पाँव चूक जाए तो यह सचमुच ही सरग की नसेनी बन सकता है।

मित्र की बात सुन कर मुझे लगा, किसी ने मेरी गरदन पर धक्का दे कर मुझे जीने से नीचे ढकेल दिया है।

खैनी तंबाकू और कंप्यूटर ट्रेनिंग

गाँव की विकास-गाथा बहुत कुछ एक दिन ही में समझ गया था। समझाया खंड विकास अधिकारी ने, जनभाषा में कहा जाए तो बी.डी.ओ. साहब ने। उन्होंने ही डॉ. अंसारी की उपाधि ए.ए.यू.पी. का तिलिस्म भी तोड़ा - ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक ऐंड यूनानी फिजिशियन।

बी.डी.ओ. साहब मित्र के मित्र थे। शाम को मिलने आए। थके हुए थे पर चेहरे पर कोई बड़ा काम कर गुजरने का संतोष था। चाय, कॉफी, शराब - किसी भी पेय पदार्थ को लेने से उन्होंने इंकार किया, भोज्य पदार्थों से भी। आराम से खटिया पर लेट कर उन्होंने अपनी जेब से चोष्य पदार्थ, यानी तंबाकू निकाली। उसमें एक डिबिया से चूना निकाल कर मिलाया, बाएँ हाथ की हथेली पर दाएँ हाथ के अँगूठे से उसे मला, थपथपाया, साफ किया, फिर दाँतों और निचले मसूढ़े के बीच उसे दबा लिया। कहा, 'कंप्यूटर की ट्रेनिंग से आज तीसरे पहर फुरसत मिली है। किसी तरह यह प्रोग्राम भी खत्म हुआ। इज्जत बच गई।'

तंबाकू का ऐसा आदिम प्रयोग करते हुए किसी को बहुत दिन बाद देखा था। उसके साथ कंप्यूटर का पुट तो और भी दुर्लभ था। मैंने पूछा, 'इस कस्बे में...?'

उठ कर उन्होंने तंबाकू की पीक थूकी, अपनी ही कहते रहे, 'कल प्रशिक्षण में आए अफसरों को आस-पास का विकास-कार्य दिखाना है, जंगल में भी घुमाना है। पर अब तो जंगल के मुहकमेवाले देखेंगे। उनके आदमी डेढ़ सौ किलोमीटर दूर पेस्ट्री और तले काजू खरीदने गए हैं। कल आप भी चलिए न!'

'पर कंप्यूटर-ट्रेनिंग? इस कस्बे में?'

'यह कस्बा नहीं, गाँव है जनाब। वैसे आबादी चार हजार के करीब हो गई है। एक बार टाउन एरिया बनाने की बात भी चली थी, पर गाँव वालों ने उसका विरोध किया।...'

'क्यों?'

'तब लोगों पर कई तरह के टैक्स न लग जाते!'

'पर गाँव का विकास भी तो हो जाता।'

फिर बी.डी.ओ. साहब की बात तांत्रिकों, ज्योतिषियों, पुरातत्ववेत्ताओं, मौसम-विज्ञानियों, समाजशास्त्रियों, कथाकारों और कवियों की अर्धस्फुट वाणी में होने लगी। उन्होंने इस जंगली क्षेत्र के तीस-पैंतीस परिवारों वाले पुरवे के विकास की कथा 'सेल्फ जनरेटिंग', 'इंफ्रास्ट्रक्चर', 'आर्केस्टेशन', 'टेक ऑफ स्टेज' जैसी योजना आयोग की भाषा में उद्घाटित करनी शुरु कर दी।

श्रोता और शिष्य था मैं, जाना-माना सनकी पत्रकार, और मित्र की मित्रतापूर्ण भाषा में, ग्रामीण अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ।

सब आवाजों के ऊपर की आवाज

पिछले बीस-पच्चीस साल में उमरावनगर नामक इस छोटे-से जंगली गाँव का विकास अपने-आप हो चुका है। इसलिए अब इसे क्षेत्रीय स्तर पर सघन विकास के लिए चुना गया है। चुनने वाले यहाँ के क्षेत्रीय विधायक हैं।

आज से दो साल पहले वे राज्य मंत्री बनाए गए थे। जैसा कि इस कथा में कहीं आगे आएगा, कोशिश उन्हें परिवहन मंत्री बनाने की थी। यहाँ चलने वाली बसों में से एक के मुनाफे में उनका आठ आने का हिस्सा था। उनके विधायक बन जाने पर हिस्से की जगह उन्हें पूरा मुनाफा दिया जाने लगा। स्थानीय ट्रांसपोर्ट यूनियन के कर्ता-धर्ता वर्मा साहब, ठेकेदार साहब, ठाकुर साहब जैसे कार्यकर्ताओं ने शोर मचा दिया कि वे परिवहन के राज्यमंत्री बन रहे हैं। अखबार तक में छप गया। इसलिए, मुख्यमंत्री के मन की बात कोई भी नहीं पकड़ सकता, यह प्रमाणित करते हुए उन्हें चीनी उद्योग का राज्यमंत्री बना दिया गया। जो भी हो, उमरावनगर में ट्रांसपोर्ट यूनियन की ओर से उनका जोरदार स्वागत-समारोह हुआ जिसके लिए अखबारों में 'भव्य' और जिसके व्याख्यानों के लिए 'भाव-भीने' जैसे ठेठ विशेषणों का प्रयोग हुआ। समारोह में उन्होंने घोषणा कर दी कि उमरावनगर में वे एक सहकारी चीनी मिल की स्थापना कराएँगे।

दो हजार मीट्रिक टन की क्षमतावाली चीनी मिल और आटाचक्की में कुछ फर्क है - मंत्री जी के प्रतिक्रियावादी अफसरों ने उन्हें यह समझाने की कोशिश की। जहाँ कही भी बिजली का तार गया हो वहाँ आटाचक्की चल सकती है। पर चीनी मिल के लिए कुछ और भी चाहिए। गन्ना तो चाहिए ही। उमरावनगर के चारों ओर सरकारी जंगल हैं। मिल चलाने के लिए दूर-दूर से गन्ना लाया जाए, तब भी पूरा न पड़ेगा - आदि-आदि उन्हें समझाया गया। पर मंत्री जी अकड़ गए। हर मंत्री की तरह उन्हें पहले से ही नौकरशाही के बारे में सबकुछ मालूम था, जिस कारण वे हमेशा सही सलाह को गलत और गलत सलाह को सही मान बैठते थे। अत: उन्होंने अपनी घोषणा को कई बार दोहराया। दोहरा ही रहे थे कि, जैसा कि आजकल किसी भी लम्हें में हो सकता है, प्रदेश के मुख्यमंत्री ने, अपनी अंतरात्मा की आवाज सुन कर - जो पार्टी हाईकमांड के आदेश की पर्यायवाची है - अचानक इस्तीफा दे दिया। हमारे क्षेत्रीय विधायक जी दूसरे मंत्रिमंडल में, बिरादरी के अनूठे प्रतिनिधि होने के नाते, फिर से राज्यमंत्री तो बना दिए गए पर उनके मुहकमे का नाम आज तक ट्रांसपोर्ट यूनियन वालों की समझ में नहीं आया। वे प्रशासनिक सुधार और कार्मिक विभाग के राज्यमंत्री बनाए गए।

दूसरा समारोह भी 'भव्य' और 'भावनीना' तो बताया गया, पर रंग कुछ फीका रहा। दुकानदार दुकान सजाए बैठा हो, पर यह पता न चले कि यहाँ कौन-सा माल बिकता है, मंत्री जी की हालत कुछ वैसी ही थी। 'प्रशासनिक सुधार' और 'कार्मिक' लोगों के पल्ले नहीं पड़ रहे थे। पर मंत्री जी का जीवट कुछ कम नहीं था। उन्होंने इस बार एक नई घोषणा की, 'आदरणीय प्रधानमंत्री के नेतृत्व में हमें नई-नई तकनीकों और पद्धतियों की जानकारी करनी होगी। खासतौर से कंप्यूटर की जानकारी तो बच्चे-बच्चे को होनी चाहिए। इसकी शुरुआत हमने अपने आला अफसरों से की है। हम अपने वरिष्ठ अधिकारियों को कंप्यूटर का प्रशिक्षण देने के लिए दो सप्ताह का एक सत्र आयोजित कर रहे हैं। यह प्रशिक्षण उमरावनगर में होगा।'

अब गले में टाई और हाथ में ब्रीफकेस लटकाए हुए जो अफसर दिल्ली के किसी वातानुकूलित कमरे की हवा में अपनी हवा जोड़ते, वे उमरावनगर में कंप्यूटर प्रशिक्षण के लिए कंप्यूटर-समेत आ गए हैं।

बी.डी.ओ. साहब यह ब्यौरा मुझे सुना रहे थे, तब उनकी आवाज के पीछे, जैसा कि फिल्म डिविजन के वृत्तचित्रों में होता है, कई तरह की आवाजें पृष्ठसंगीत का काम कर रही थी। नीचे सड़क पर विचरते और चरते हुए गधों की 'सीपों-सीपों', ट्रकों के प्राणबेधी हार्न, आटा चक्की की 'किट्-किट्' एक साथ कई दुकानों पर बजते हुए ट्रांजिस्टर और एक दुकान पर ऐंप्लीफायर के सहारे गरजता हुआ एक लगभग अश्लील लोकगीत, आदि-आदि। इन आवाजों को कुछ देर पहले लाउडस्पीकर पर गूँजती हुई अजान ने पस्त किया था, पर अजान तो चंद मिनटों का करिश्मा है। उसके खत्म होते ही स्वामी रघुवरदास के आश्रम का कीर्तन बाकी सब आवाजों पर हावी हो गया था।

कीर्तन में जनाना-मर्दाना, दोनों ही आवाजें थी पर सबसे प्रबल आवाज एक नारी कंठ की थी। बी.डी.ओ. साहब की बात खत्म होते होते वह नारी कंठ तारसप्तक के मध्यम पर जा कर टिक गया और वहीं टिका रहा। फिर उससे भी एक स्वर ऊपर जा कर उसने आलाप लिया : की...ई...ई...ई...की...ई...ई...ई। लगा, कोई फेफड़ा फाड़ कर चीख रहा है!

मेरे मत्थे पर उलझन की रेखाएँ उभर आई होंगी। बी. डी. ओ. साहब बोले, 'लगता है सियादुलारी जी को फिर से दौरा पड़ा है!'
पर सियादुलारी जी की बात बाद में, पहले ये पाँच कोठियाँ। पर उसके भी पहले एक नजर उस फिजा पर जो विकास से पहले की है।

इलाज के पहले

कुछ दूरी पर आम के ठूँठ की एक सूखी, पर मोटी डाल आसमान की ओर हाथ उठा कर पनाह-जैसा माँग रही है। उसी के पास यह कोठी बनी है। उमरावनगर का यह पहला पक्का मकान है। आम के ठूँठ से आप सोच सकते है - और सही सोचेगें - कि यहाँ पहले एक अमराई थी। उसके वे पेड़ जो सड़क के किनारे नहीं थे, पहले ही शहरवालों के चूल्हे-भाड़ में जा चुके हैं। सड़क के किनारेवाले पेड़ सरकारी है। इसलिए वे 'काटे-बिना ही काट-देने की पद्धति' से सिर्फ ठूँठ बना कर छोड़ दिए गए हैं।

यह पद्धति कैसी है? वैसी ही, जैसे टैक्स-लगाए-बिना-टैक्स-लगने की पद्धति। जैसे, कुछ महीने हुए, पेट्रोलियम पदार्थों के दाम हचक कर बढ़ा दिए गए। लोगों ने चिल्लपों मचाई तो सरकारी अर्थशास्त्रियों ने समझाया : तुम लोग मान लो कि दाम नहीं बढ़ाए गए हैं, हमने तो इन पदार्थो पर सिर्फ एक टैक्स-जैसा लगाया है। टैक्स देनेवालों ने एक-दूसरे मौके पर चिल्लपों मचाई तो उन्होंने वहाँ समझाया : हम टैक्स की दर बढ़ाना नहीं चाहते न नए टैक्स लगाना चाहते हैं। इसीलिए देखो, हमने पैट्रोल आदि की कीमत बढ़ा दी है!

तो, जनता ने भी सरकार के साथ वैसा ही किया है। ईंधन की कमी हुई तो बीवी को बताया, 'सड़क वाला पेड़ काट कर ला रहा हूँ।' पेड़ की उन्होंने इधर-उधर की शाखें छाँट दी, बस फुनगी छोड़ दी। फिर सारा काम तने पर किया। उसकी पहले छाल छील दी, फिर कुछ गहरे पैठ कर गूदे से कई दिन छोटी–छोटी चिप्पियाँ निकालीं। निकालते

रहे। बाद में एक कटा-पिटा गावदुम तना और आसमान की ओर बाँह पसारे एक एक शाखा-भर रह गई। समय आने पर यानी असमय में यह अस्थिपंजर सूख गया, पत्तियाँ गायब हो गईं। पेड़ की सूरत कूड़े पर पड़ी हुई बिना इंजिन और पहिए की मोटर-जैसी, और कुल मिला कर उसकी शक्ल हिंदुस्तान के लंबोतरे नक्शे-जैसी निकल आई। इस तरह कट जाने पर भी पेड़ कटा नहीं। सड़क के हाकिमों ने पेड़ के तने पर तारकेल से जो नंबर डाला था वह बाकायदा कायम रहा!

ये अस्थिपंजर सड़क के किनारे दूर-दूर तक खड़े हुए हैं। इनके पीछे जो अमराई थी, उसके पेड़ों को ले कर इस नुक्तए-नफासत की जरूरत न थी। इसलिए उनकी जगह पहले वीराना हुआ। फिर वहाँ यह कोठी बन गई, जिसमें अब सरकारी दवाखाना है।

जब यह न बनी थी तब यह उमरावनगर एक छोटा-सा निहायत गँवार गाँव था, वैसे कहने को राजा उमरावसिंह की ताल्लुकेदारी का एक जिला था। अर्थात, वहाँ एक जिलेदार रहता था। उसके लिए और उसके अमला और कुछ वफादार लठैतों के लिए राजा साहब ने सड़क के दोनों ओर कुछ इमारतें बनवा दी थी। ये खपरैल के कच्चे घर थे। सिर्फ जिलेदार के घर की दीवारें पक्की थी। हर इमारत में आगे का बरामदा और अंदर दो कोठरियाँ थीं जिनको, अगर कोई रोशनदान हो तो, कमरा कहा जाता था। इनके भीतरी धुँधलके में मकड़ी, मच्छर, छिपकली, कनखजूरे या बिच्छू भले ही पनप लें और साँप भी - सूरज की चौंध, पूस-माघ की हवा, लू, धूल-धक्कड़ आदि हरगिज नहीं आ सकते थे। अंदर सँकर-सा बरामदा, आँगन। हर इमारत के बीच ढाई फुट चौड़ा रास्ता छूटा था, यानी इस सभ्यता में वास्तुकला की कमी न थी। यह जरूर है कि मोहनजोदड़ो की सभ्यता में नालियों को जो स्थान मिला था, वह यहाँ नहीं था। किसी भी इमारत में नाली न थी। राजा साहब जानते थे कि जो बात अपने देश के चरित्र के लिए सच है, वही पानी के लिए भी है। पानी हर हालत में अपना धरातल ढूँढ़ लेता है।

इससे इतना जरूर हुआ कि जमींदारी टूट जाने पर, और इन इमारतों के रखरखाव में कमी हो जाने से बहुतों को पानी ने ही मटियामेट कर दिया। उन्हीं पर नई कोठियाँ बनी। कुछ का पानी अपनी राह अब भी निकाल लेता है। वे बच गई हैं। पर उनको ले कर दर्जनों लोगों में दीवानी के मुकदमे चल रहे हैं। हर एक का दावा है कि उसने यह इमारत पक्के कागज पर जिलेदार साहब से खरीदी है।

पहली कोठी

जिलेदार आला अफसर था। बीस रुपया महीना पाता था। वह यहीं जिले पर रहता था। रहता भी क्या था, एक मल्लाह लड़की की सोहबत में कुछ दिन बिताने के लिए यहीं चला आता था।

खपरैल के ये घर, जिनमें दूकानें भी लग सकती थीं, सड़क के दोनों किनारों पर लगभग सौ गज तक चले गए थे। इनके पीछे आम और शीशम की बड़ी-बड़ी बागें थीं। उनके पीछे खेत, नदी, जंगल। फिर जंगल ही जंगल।

वातावरण रमणीक था, सिर्फ रमण करने वालों की कमी थी। खपरैल के घर दुकानें ज्यादातर खाली रहतीं। लोगों को यहाँ लुट जाने का डर था। खपरैल के कुछ घर जिलेदार के पास थे जिनमें वह खुद रहता था, एक में धीवर-कन्या और उसके माँ-बाप रहते थे, एक में उसके बहनोई-ननदोई। एक में उसके सास-ससुर रह सकते थे, पर रहते नहीं थे। उनका बेटा जवान होने के पहले चल बसा था। बहू, उनकी राय में, कुलच्छनी थी पर अपने माँ-बाप की राय में वह सोने की मछली थी। जिलेदार के बारे में भी उनकी राय बड़ी उदारतापूर्ण थी। वे उसे बड़ा नेक और रईस मानते थे। आम लोगों की राय भी यही थी।

बाकी इमारतों में से कुछ में रियासत के दो-चार कारिंदे रहते थे। सुखमय जीवन बिता रहे थे। उन्हें लुटने का डर न था; लूटने वाले उन्हीं के आदमी थे।

जमींदारी टूटने के कुछ साल पहले और बाद जमींदारों ने अपनी जायदादें बेचनी शुरु की। कुछ तो अपने ऊसर-बंजर और उनका एक-एक तिनका बेच कर शहरों की ओर भागे और वहाँ एम.एल.ए., जिला परिषद के अध्यक्ष या,

कुछ न हुआ तो किसी भी आँय-बाँय-शाँय पार्टी के नेता बन कर अपनी नई हैसियत बनाने लगे। राजा उमराव सिंह के वारिस किसी छोटे-मोटे देश में इस देश के राजदूत बन गए और इमारतें बेचने के लिए माथापच्ची करने लगे। बिक्री का अभिमान चला। पर खरीदने वाले न थे। तब उनकी मदद राजा साहब के एक फटीचर, पर नेतानुमा रिश्तेदार ने की।

वे जिला सहकारी संघ के अध्यक्ष थे। उन्होंने उमरावनगर बाजार के पाँच मकान, छः रूपया महीना प्रति मकान की दर से, किराए पर ले लिए। उनमें सस्ते गल्ले, चीनी, कपड़े, मिट्टी के तेल और सीमेंट की दुकानें खुली। फलस्वरुप वहाँ के सहकारी सुपरवाइजर ने छः महीने में ही तीन मकान अपने लिए खरीद लिए। पर उनकी बात छोड़िए। अभी हमें पहली कोठी में ही रहना है।

सहकारी दुकानों पर बिक्री अच्छी होती थी। सिर्फ सीमेंट की खपत नहीं थी। शायद उसी को बढ़ावा देने के लिए दो साल के भीतर ही पहली कोठी बनने लगी। कोठी संघ के अध्यक्ष की थी। जब वह बन चुकी तब उनके विरोधियों ने भ्रष्टाचार का नाम ले कर चिल्लपों मचाई। उन दिनों भ्रष्टाचार को थोड़ा बुरी चीज माना जाता था। इसलिए अध्यक्ष ने सार्वजनिक जीवन में स्वस्थ परंपराओं की रक्षा के लिए अपने पद से इस्तीफा दे दिया। जिला सहकारी संघ एक दूसरे अध्यक्ष के पास चला गया। कोठी भूतपूर्व अध्यक्ष के पास रही।

राम-राम है, लूट है

भगवान रजनीश, सत्य साईं बाबा, महर्षि योगी, स्वामी सदाचारी आदि विज्ञान और तकनीकी के युग की पौध है। स्वामी रघुबरदास जी भी इसी श्रृंखला की एक कड़ी हैं। अंतरराष्ट्रीय जगत में अभी उनके जेट की गड़गड़ाहट नहीं गूँजी है, पर जिस तेजी से उमरावनगर के आकाश में उन्होंने छलाँग लगाई है, उससे लगता है कि वे मनुष्य से भगवान बन चुके हैं और अब भगवान से ऊँचे उड़नेवाले जेट विमान बननेवाले हैं।
ऐसा सुना जाता है कि भगवान बनने से पहले वे किसी बालिका-विद्यालय में हेड क्लर्क थे। अपने स्टॉक की सारी सुंदरता परमात्मा ने उनके मन को सौंप दी थी, पर उनके तन और मन की कशमकश में उन्हें वहाँ, यानी बालिका-विद्यालय में, बड़े-बड़े संकट झेलने पड़े; औसतन साल में एक बार पिटने से ले कर हर दूसरे-तीसरे साल मुअत्तल होने तक का अनुभव उन्हें दोहराना पड़ता था। अंत में उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया, वह शायद उस देसी तमंचे की नली का असर हो जो एक बालिका के भाई के मजबूत हाथ के जुड़ी हुई सपनों तक में उनका पीछा करने लगी थी, या तुलसीदास या विल्वमंगल या ऐसे ही किसी अर्जी-फर्जी महात्मा की वैराग्य कथा का दोहराव हुआ हो जिसमें सुंदरता की सारी पर्तें फाड़ कर उन्हें सब जगह 'हाड़-चाम', 'हाड़-चाम' ही दीख पड़ने लगा। बहरहाल, इस बार कालेज प्रबंधक को उन्हें मुअत्तल करने की जरूरत नहीं पड़ी, उन्होंने खुद इस्तीफा दे दिया। दो साल वे किसी हिमालय की किसी गुफा में किसी गुरु से दीक्षा लिए हुए कोई तपस्या करते रहे, फिर जब वे उमरावनगर में पीतांबर धारे दुख-मोचन तिलक भाल पर लगाए प्रकट हुए तो वे भगवान बन चुके थे। उनका एक संप्रदाय बन चुका था। उसका अपना झंडा था, अपनी (पीतांबर का कुर्ता, वैसी ही लुंगी, चेलियों की पीतांबरी साड़ी और कत्थई ब्लाउज - किसी-किसी पर वह सचमुच ही फबता था।), अपनी पूजा-विधि, अपनी साधना-पद्धति, अपने भजन, कीर्तन - सभी कुछ अपने थे। अपना आश्रम, अपने दानदाता, अपना भंडारा भी।

खास बात यह कि स्वामी रघुबरदास भगवान रामचंद्र के अवतार थे। उनके साथ सिंहासन पर बैठने के लिए एक सियादुलारी भर्ती की गई। उनका असली नाम फूलमती था। जिलेदार साहब और मल्लाह बेवा के पुष्पित प्रेम से वे उत्पन्न हुई थीं। जिलेदार साहब ने उसे हाई स्कूल तक पढ़ा भी दिया था। अब वे अचानक सियादुलारी बना ली गई थीं।

इधर कुछ दिनों से कीर्तन करते-करते वे चीखने लगी थीं। रामायण-कथा में ऐसी सियादुलारी की गुंजायश न होने पर भी रघुबरदास ने अभी तक उन्हें वनवास नहीं दिया था।

उमरावनगर की सभ्यता का यह कीर्तिमान था। शाम की अजान के तुरंत बाद आश्रम में भजन-कीर्तन होने लगता था। इसे सांप्रदायिक सद्भाव और विभिन्नता में एकता कह कर नेता लोग गाँव की छवि उभार रहे थे। सांप्रदायिक दंगे किसी भी वक्त हो सकते थे। पर अभी हुए नहीं थे क्योंकि सभी पक्ष अभी रुपया बटोरने में लगे थे, वे उसे सहर्ष गँवाने की हैसियत तक अभी नहीं पहुँचे थे।

दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी कोठी

सभी जानते हैं कि अपना देश परंपराओं का देश है। किसी विदेशी ने कहा है कि महापुरुष समय के बालू पर अपने पदचिह्न छोड़ जाते हैं। बालू पर ये चिह्न कितनी देर टिक सकते हैं? पर अपने देश का महापुरुष जिधर निकल जाता है वहीं चिरंतन मार्ग बन जाता है। इसलिए यहाँ स्थायी परंपरा बनाने के लिए किसी महापुरुष को कुल इतना करना है कि जिधर चाहे उधर ऊँट की तरह गर्दन उठा कर निकल जाए।
जिला सहकारी संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष ने यही किया, संघ से इस्तीफा दे कर उसे उन्होंने दूसरे अध्यक्ष के हाथ सौंप दिया, कोठी अपने पास रख ली। यह परंपरा बन गई। सिलसिला कायम हो गया। फिर हर दो साल बाद संघ का अध्यक्ष बदलता और हर अध्यक्ष दो साल में यहाँ एक कोठी बनवा कर अपने पद से अलग हो जाता। दस साल में पाँच कोठियाँ बन गईं। गनीमत है कि पाँचवें अध्यक्ष को हटा कर सरकार ने संघ का निदेशक-मंडल तोड़ दिया और एक नौजवान अफसर को उसका प्रशासक बना दिया। नहीं तो अब तक उमरावनगर में तिमंजला कोठियाँ बाँसकोठियों की तरह उग रही होतीं। फिर भी, आशा है, नौजवान होते हुए भी अफसर ने परंपरा को एकदम नहीं तोड़ा है। सुनते हैं कि उसने कुछ शहरों में छोटे-छोटे बँगले बनवाए हैं। व्यक्ति और समय के अनुसार परंपरा में कुछ तबदीली आ जाए तो बुरा नहीं मानना चाहिए। यह सामाजिक गतिशीलता का लक्षण है। फिर, यदि उठाईगिरी के पैसे से गाँवों का सही विकास होता रहे और शहर अछूते रह जाएँ तो विकास की प्रक्रिया में असंतुलन आ जाएगा। इसलिए संघ के प्रशासक को हमें आधुनिकता और परंपरा का एक बेजोड़ समन्वय मानना चाहिए जो उठाईगिरी की परंपरा को निभाते हुए आधुनिक नगरों के निर्माण में अपनी हैसियत-भर योगदान दे रहा है।

बहरहाल, सहकारी संघ के भूतपूर्व अध्यक्षों ने जो कोठियाँ बनावाईं उनसे उमरावनगर गाँव होते हुए भी एकदम से नगर हो गया। कोठियाँ होगी तो कारोबार भी होगा। पहले अध्यक्ष ने कोठी की निचली मंजिल अपने स्वर्गीय पिता के नाम पर दवाखाना खुलवाने के लिए सरकार को पट्टे पर, बिना किराए के, दे दी। इससे जनता और सरकार - दोनों पर उनकी धाक जमी और एक दवाखाना खुल गया। इस दवाखाने की दवाइयाँ चुरा कर बिकवाने के लिए सड़क के दूसरी ओर एक दवा की दुकान खुली। दुकान कंपाउंडर के भांजे के नाम से है। भांजे का नाम डा. यम.जेड. अंसारी, ए.ए.यू.पी., पी.पी. यम.पी. आदि है। उनका डाक्टरी पेशा दुकान के सहारे और दुकान सरकारी दवाखाने के सहारे चलती है।
डा. अंसारी और सहकारी डाक्टर में कोई खटपट नहीं है। दरअसल, सरकारी डाक्टर अंसारी साहब के सहारे इत्मीनान से शहर में रहते हुए अपना क्लीनिक चलाते हैं। हर महीने की पहली तारीख को नियमित रुप से आ कर वे अपनी तनख्वाह, कंपाउंडर की निजी प्रैक्टिस की आमदनी की चौथा और डा. अंसारी की दूकान से बिकी हुई सरकारी दवाओं की कीमत का आधा हिस्सा एक साथ उगाह कर फिर शहर वापस चले जाते हैं।

दूसरे अध्यक्ष ने जो कोठी बनवाई, उस पर भ्रष्टाचार का कोई सवाल नहीं उठा। इसलिए उसे या किसी मंजिल को सार्वजनिक हित के लिए मुफ्त देने का सवाल भी नहीं उठा। वास्तव में, उसका ज्यादा-से-ज्यादा किराया वसूल कर उन्होंने प्रमाणित करना चाहा कि यह कोठी उनके खून-पसीने से बनी है, भले ही उसके लिए अपने मुँह से उन्हें पान की पीक तक न खर्च करनी पड़ी हो। उनका एक भतीजा वन-विभाग में रेंजर था। न जाने उसका क्यों और कैसे और कितना प्रभाव था कि कुछ दिनों बाद ही इस कोठी में राज्य वन-निगम का एक प्रखंड खुल गया। यही नहीं, उसके पिछवाड़े की रियासत वाली बाग भी किराए पर उठ गई और उसमें इस प्रखंड की जंगली लकड़ी का देखते-देखते एक विशाल डिपो कायम हो गया। इसकी तफसील अभी कुछ रुक कर।

तीसरे अध्यक्ष ने प्रतिज्ञा की कि उनकी कोठी में वन-प्रखंड से भी बड़ा दफ्तर खुलेगा। शहर में भी उनके दो-तीन मकान थे जिन्हें डाकघरों के लिए किराए पर उठाने में उन्होंने विशेज्ञता प्राप्त की थी। डाक-तार विभाग के साथ उनके दिल्ली तक बड़े गाढ़े संबंध थे। पर देहात की इस कोठी में अगर एक छोटा-मोटा डाकखाना जनता की जरूरत के नाम पर खुल भी जाता तब भी उसका किराया काजू और विह्स्की पर होने वाले उनके मासिक खर्चे के लिए काफी न होता, जबकि इन दोनों पदार्थों से उनका बड़ा पुराना और गहरा लगाव था। इसलिए डाक-तार विभाग की जानीबूझी राह छोड़ कर उन्हें न जाने कितने उल्टे-सीधे मुहकमों की भूलभूलैया में भटकना पड़ा। अंत में, जोरदार सिफारिश और भारी घूस ने रंग दिखाया। इस कोठी में ग्रामसेवकों और पंचायत के ग्राम-विकास अधिकारियों का एक प्रशिक्षण केंद्र खुल गया। अच्छे शौचालयों और स्नानागारों के बावजूद, कोठी के बाहर बनियाइन-लुंगी पहने, हाथ में लोटा लटकाए नौजवानों के जो जत्थे आप शाम-सुबह सड़क पर देखते हैं, वे इन्हीं प्रशिक्षणार्थियों के हैं। इसी में ऊँचे अफसरों को आजकल कंप्यूटर की ट्रेनिंग दी जा रही है।

चौथी कोठी का मालिक कुछ लटे-पटे किस्म का था। उसमें मछली-पालन का एक छोटा-सा दफ्तर खुल कर रह गया। उसके अदना-से-हाकिम जो लोग, दूरदर्शन के अधिकांश समाचार-वाचकों के वीभत्स उच्चारण की नकल में, 'मतस्स' विकास अधिकारी कहते हैं। एक ओर गाँववाले जब पोखरों और तालाबों को पाट कर वहाँ धान के खेत निकाल रहे हैं, 'मतस्स' अधिकारी खेतों को खुदवा कर मछली-पालन के लिए तालाब बनवा रहा है।

पाँचवीं कोठी किराए पर नहीं उठी। तब उसके मालिक एक खटारा ट्रक पर शहर से सामान लाद कर आए और यहीं बस गए। उन्होंने कहा, 'अब मैं यहीं रहूँगा और गाँव में रचनात्मक काम करूँगा।' आज तक वे यही कर रहे हैं।

बुरी नजर वाले तेरा मुहँ काला वह ट्रक पिछले साल बिका है और उसकी जगह तीन नए ट्रक आ गए हैं। इनके अलावा दो बसें और एक जीप भी कोठी के आगे खड़ी दिखती है। ट्रकों के पीछे भाँति-भाँति के सिद्धांत वाक्य, शेरो-शायरी, 'जय जवान-जय किसान' जैसे नारे लिखे हैं। इन इबारतों के हिसाब से हर ट्रक का व्यक्तित्व या संप्रदाय अलग-अलग दिखता है। इनमें 'बुरी नजर वाले तेरा मुँह काला' - सिर्फ यही सिद्धांत-वाक्य ऐसा है जो तीनों में एक अक्षरों में लिखा है। हर ट्रक में इस इबारत के नीचे जूते की एक-सी तस्वीर बनी है। इसी से प्रमाणित होता है कि इन तीनों ट्रकों का मालिक एक ही है। वही पाँचवी कोठी के मालिक हैं। उनकी बढ़ती हुई हैसियत के साथ लोग उनका पुराना नाम और कुल गोत्र भूल गए हैं। उनका नाम अब सिर्फ ठाकुर साहब रह गया है। बसों आदि के भी वही मालिक हैं।

पुराना ट्रक देखने में भले ही खटारा रहा हो पर वह शीशम के बेशुमार कुंदे लाद सकता था। इसलिए ठाकुर साहब ने, जो तब रमेसर भाई कहलाते थे, उस पर शीशम के कुंदे लदवाने का काम शुरु किया। शहर को जाने वाली, और दूसरे छोर पर जंगल में गुम हो जाने वाली यह जो सड़क है, बड़ी पुरानी है। कहा जाता है, त्रेता युग में राम लक्ष्मण जानकी उसी से किसी तरफ गए थे। तब सोचिए, इसके किनारे लगे हुए शीशम के पेड़ कितने पुराने होंगे। उनकी लकड़ी, एक तरह से, अष्टधातु की-सी हो गई है। ठाकुर साहब ने इन्हीं पेड़ों का अपनी खटारा ट्रक से सवार और सवारी का रिश्ता बना लिया। हर रात कोई-न-कोई पेड़ मशीन की तेजी से कटता, उसके कुंदे ट्रक पर शहर पहुँच जाते और उसके बाल, अंतड़ियाँ और बचे-खुचे हिस्से पास-पड़ोस के गाँवों में पहुँच जाते। यह काम कई महीने बड़े सुभीते से चला क्योंकि उन दिनों सड़क का जूनियर इंजीनियर उनके साले का सहपाठी निकल आया। पर ठाकुर साहब इस कारोबार में ज्यादा दिन नहीं टिके। शहर में इस बेशकीमती लकड़ी की बिक्री से उन्हें जो 'बीज पूँजी मिली' उसको राष्ट्रीयकृत बैंको की विकासपरक नीति से जोड़-मिला कर उन्होंने ट्रकों और बसों का एक बेड़ा धीरे-धीरे तैयार कर लिया। एक ट्रक का आधा मुनाफा शुरु में जूनियर इंजीनियर साहब को और एक बस का विधायक जी को दिया जाने लगा। बाद में, विधायक जी के राज्यमंत्री बन जाने पर ठाकुर साहब ने यह बस पूरी तौर से विधायक जी की मार्फत राष्ट्र को अर्पित कर दी। विकास एक चिरंतन प्रक्रिया है। ऐसा योजना आयोग ने कहा है। ट्रक से भेजी जाने वाली शीशम की लकड़ी से शहर में कितना निर्माण-कार्य हुआ, कितने नए मुहल्लों और घरों का विकास हुआ, इस पर भी लिखा जा सकता है; पर, क्षमा करें, अभी मुझे उमरावनगर पर ही बहुत कुछ लिखना है।

ठाकुर साहब अब बड़े आदमी हैं। मधुमेह, रक्तचाप आदि से लैस। नपुंसकता भी आ जानी चाहिए। पर उनकी मूँछें, दिन पर दिन उनके चेहरे की मोहक उग्रता बढ़ाती चली जाती हैं। वे रईसी के इस दर्जे तक पहुँचने में अपनी आरंभिक दिनों का जिक्र नहीं करते हैं, पर उनकी ट्रांसपोर्ट यूनियन इस इलाके में इतनी ताकतवर कैसे बनी है, इसका जिक्र वे बिना लाग-लपेट करते रहते हैं।'

"बुरी नजर वाले तेरा मुँह काला" यूँ ही नहीं लिखा है। ऐसा है मास्टर साहब, कि हमारी ओर जो भी बुरी नजर फेंकेगा, उसके लिए वह फोटो पहले ही बना दी गई है।'

ठाकुर साहब यह मेरे अध्यापक मित्र को, मेरी जानकारी के लिए सुना रहे थे।

'मैंने तो कुछ किया नहीं, मास्टर साहब। आप जानते ही हैं, मेरी मूँछें देख कर बाहरी लोग मेरे बारे में कुछ भी सोचें, मैं झगड़ा फसाद से हमेशा दूर रहता हूँ। किसी के लिए कभी कोई बात नहीं कही, खरा खेल फरुख्खाबादी! पर आप खुद सोचिए, जब हमारी बसें और इक्के, और इक्के भी क्या, यहाँ से पच्चीस किलोमीटर तक जाते थे। वहाँ कस्बे से उमरिया की ओर आनेवाली बसों पर लोग भेड़ियाधसान में बैठते थे। तब कहीं शहर पहुँचते थे। हमने लाखों रुपए फूँक कर ये बसें चलाईं, फिर इकबाल मियाँ की बसें भी बढ़ीं, फिर वर्मा की बसें आईं। अब मुसाफिर यहाँ से खटाखट ढाई घंटे में शहर पहुँचता है।'

'तब उमिरियावालों ने चलाए टेंपो। कब? जब हमारी यूनियन ने लाखों रुपए बसों पर फूँक दिए। तो तुम्हीं बताओ मास्टर साहब, टेंपो कैसे चलेंगे? चले? नहीं चले? हमने कुछ नहीं किया। यही इकबाल मियाँ ने घुड़क दिया। टेंपो वाले दुम दबा कर अपने-अपने बिलों में घुस गए।'
अब मैंने पूछा, 'सरकारी बसें भी तो चली थीं।'

'तो चलें। उन्हें कौन रोकता है? हुआ क्या कि स्कूली लड़कों ने एक बार दो बसें फूँक दी। सुनते हैं कि कोई बदकलाम ड्राइवर था। कहीं पिट गया। तो वे बसें बंद हो गईं। सरकार बस चलाए तो हम कैसे मना करेंगे? सरकारी ड्राइवर, खुद इस रूट पर नहीं चलना चाहते। झूठ-मूठ हमारी यूनियन को बदनाम करते हैं?'

'सोचता हूँ, ये मूँछे मुँड़ा लूँ। बेमतलब लोग बदनाम करते हैं।' मैंने उन्हें मना किया, छतनार मूँछों का महत्व समझाया। वे आश्वस्त हुए।
अध्यापक मित्र शरारत और खुशामद की मिली जुली-बोली में बोले, 'ठाकुर साहब, दिनवाली रेल तो आप लोगों ने बंद कराई है।'
इस पर वे हँसे, 'यह तो हमें भी मालूम है। इकबाल मियाँ का करिश्मा है। सवेरे शहर से आने वाली गाड़ी यहाँ रुकती थी, वही गाड़ी शाम को शहर जाते वक्त रुकती थी। अचानक वह गाड़ी कैंसल हो गई है। कुछ लोग उड़ाते हैं कि इकबाल मियाँ रेलवे टाइम टेबल बनाने वालों को कुछ ले-दे आए हैं। शुबहा मुझे भी है। पर राम-कसम, हमारी यूनियन ने एक कौड़ी नहीं दी है। रेलवे को घाटा हो रहा था।'
सवेरे मैं घूमता हुआ स्टेशन तक गया था। रमणीक स्थान था। चारों ओर घनी बागें। चिड़ियाँ इफरात में थीं। आदमजात दिखाई नहीं देता था। अब रात को शहर जाने वाली एक गाड़ी आती है, दो बजे रात को रुकती है। जो गाड़ी शहर से आती है वह तीन बजे रात को रुकती है। बसों पर बकरी, मुर्गी और इनसानों की मैत्री के लिए कोई खतरा रहा हो तो वह दूर हो चुका है।

धर्म से धर्म बढ़ता है।

चार-पाँच घंटे में शीशम का बड़े-से-बड़ा पेड़ कटा कर मुँह अँधेरे उसकी जगह पर ऊसर निकाल देना मामूली मेहनत का काम न था। इसके लिए एक अच्छे संगठन की जरूरत थी जो सरकस के कार्यकर्ताओं की तरह शेरों की उछल-कूद खत्म होते ही तोप की नली से जिंदा आदमी निकालने के लिए पलक झपकते स्टेज तैयार कर दे। ऐसा

संगठन ठाकुर साहब ने तैयार कर लिया था। वह बसों और ट्रकों के विस्तार के साथ और भी सुदृढ़ हो गया था। इस संगठन ने भी उमरावनगर के विकास में 'कैटालिटिक एजेंट' का काम किया।

इस संगठन के आठ प्रमुख सदस्य थे। उनमें से एक किसी दिन ज्यादा दारू पी कर अपने ही ट्रक के नीचे कुचल गया। दूसरा बिहार में कोयले की खदानों में काम करनेवाले एक यूनियन लीडर का अंगरक्षक बन गया। बाकी छः के लिए जीविका का कोई दृश्य-श्रव्य साधन जरुरी था। उनके लिए सड़क के दूसरी ओर कुछ शानदार दुकानें बनवा दी गईं। खपरैल की पुरानी इमारतें तोड़ कर शीशम से अर्जित थोड़ी सी पूँजी का निवेश कर के इन दुकानों पर मदनानंद मोदक से ले कर डीजल के पंपिंग सेट तक बेचने की व्यवस्था हुई। उधर बाग में राम-जानकी का जो मंदिर बना, वह भी इसी पूँजी का फल है। उसके आगे बैंक की जो इमारत है, यह भी। घास चरते हुए खच्चर की पीठ तक पर जब आजकल बैंक की शाखा खुल जाती है तो उमरावनगर में बैंको को तो आना ही था। ठाकुर साहब ने वैसे इस बैंक की इमारत के लिए बैंक से ही कर्ज लिया था। पर सुनते हैं कि उस कर्ज को उन्होंने दूसरों के बीच कर्ज पर उठा दिया। उनके ब्याज की दर बैंक से तीन गुनी थी, पर वह कर्ज नहीं देते। इस तरह, जहाँ न जाय रवि, वहाँ गया कवि।

धर्म से धर्म बढ़ा। दरअसल, इकबाल साहब ने जब बाग में मस्जिद बनवानी शुरु की तभी सामने की दूसरी बाग में मंदिर की नींव पड़ी। मस्जिद अभी पूरी हुई है, मीनारों की धुसलनी लाल ईंटो पर जो कीमती टाइल लगने हैं, वे अभी हैदराबाद से नहीं आए हैं। पर उनके ऊपर डमरु-जैसा लाउडस्पीकर का एंप्लीफायर पहले से लग गया है। उधर दूसरी ओर मंदिर से लगी हुई दो बीघा जमीन में स्वामी रघुबरदास का आश्रम फैला है। इसमें थोड़ी जमीन इकबाल मियाँ की भी थी। सांप्रदायिक सद्भाव कहिए, या अनेकता में एकता, या ठाकुर साहब के साथ की गिरोहबंदी, इकबाल मियाँ ने यह जमीन आश्रम को सौंप दी है।

इस समय राम भगवान उर्फ स्वामी रघुबरदास, सिंहासन पर विराजमान हैं। आजानुबाहु, वृषस्कंध, व्यूढोरस्क, कोटि-मनोज-लजावन-हारेवाले राम से उनका हुलिया बिलकुल नहीं मिलता। देखने में वे गिरिस्ती की चट्टान के नीचे दबे, अधखाए, अधभूखे, थके-थकाए किसी देहाती कालेज के बड़े-बाबू जैसे लगते हैं जो कि वे कभी थे भी।

लाल मखमली चँदोवे के नीचे, जिसमें चाँदी के चमकदार तारों से बेलबूटे सजा कर रघुवंशियों के दरबारे-आम की रौनक पैदा की गई है, एक दूसरे सिंहासन पर सियादुलारी बिराजी हुई हैं। राम भगवान ने उन्हें कालिज ही में पहचान लिया था, जब वे जिलेदार साहब की मदद से वहाँ हाई स्कूल में पढ़ने जाती थीं। सियादुलारी मूर्ति की तरह निश्चल बैठी है, सिर्फ साँवले-सलोने चेहरे पर बड़ी-बड़ी मदभरी आँखे स्थिर नहीं हो पा रही हैं।

राम भगवान एक श्लोक बोलते हैं, फिर एक स्वरचित भजन गाने लगते हैं। सामने बैठा भक्त-समुदाय, जिसमें पीतांबरा बालिकाओं का बहुमत है, उस भजन की कड़ी को उठा लेता है।

उधर लाउडस्पीकर पर अजान शुरु होती है।

बी.डी.ओ. साहब ने बताया:

'अभी तक सब ठीक है। ठाकुर साहब और इकबाल मियाँ के रहते झगड़े का डर नहीं। पर इनके बाहर चले जाने पर दो-तीन बार झमेला होते-होते बचा है। अब सुनते हैं, इन दोनों ने खुद पुलिस कप्तान से कहा है कि यहाँ सशस्त्र पुलिस की एक कंपनी तैनात कर दी जाए। ठाकुर साहब की कोठी के ऊपरी तल्ले खाली पड़े हैं। वे किसी छोटे घर में जा कर रहना चाहते हैं। कंपनी के लिए वे कोठी किराए पर उठाने को तैयार हो गए हैं। कंपनी कमांडर के रहने का इंतजाम इकबाल मियाँ कर देंगे।'

मजहर मियाँ की भरत–भक्ति

ठाकुर साहब और इकबाल साहब के सद्भाव का मुख्य आधार पंचशील का वह शील रहा है जिसके अंतर्गत पड़ोसी राज्यों को एक-दूसरे की सीमा का सम्मान करना चाहिए। उमरावनगर के आसपास फैले जंगलों में चोरी और सीनाजोरी के सहारे चलनेवाली पेड़ों की कटाई की परंपरा बहुत पुरानी है। जंगलों की नाजायज कटाई पर वहाँ इकबाल मियाँ का एकाधिकार रहा है। पहले वे गाँव के पास एक उससे भी छोटे गाँव में भी रहते थे। बाद में, बिजली आ जाने पर, उन्होंने सड़क के किनारे लकड़ी चीरने के लिए मशीनें लगवा लीं। उसे फैक्टरी कहा जाने लगा और उसी से सटा कर उन्होंने अपना मकान भी बनवा लिया। सरकारी जंगल के एक छोर पर एक छोटा सा निजी जंगल था। वहाँ कुटिया डाल कर उनके छोटे भाई मजहर मियाँ भाई की सेवा करने लगे।

ठाकुर साहब ने सरकारी जंगल की लकड़ी पर कभी कुदृष्टि नहीं डाली। वह इकबाल मियाँ का काम था। खुद वे सड़क के किनारे वाले शीशमों पर तत्पर रहे। इस तरह लकड़ी का कारोबार करते हुए भी दोनों में कभी खटपट नहीं हुई। बाद में ट्रांसपोर्ट यूनियन में उनकी दोस्ती और भी पक्की हो गई।

पहले भी मजहर मियाँ सरकारी जंगल से श्रद्धापूर्वक पेड़ कटवा कर बड़े भाई की फैक्टरी में भिजवाया करते थे। पर दूसरी कोठी में वन विभाग का प्रभाग खुलने के बाद इस कारोबार को सही दिशा मिल गई। पहले ही साल डिपो की लकड़ी की नीलामी राज्य में सबसे ऊँची कीमत पर टूटी। आखिरी बोली इकबाल मियाँ की थी। देखते-देखते सारे प्रदेश में वन-निगम का यह प्रभाग इतनी आमदनी देने लगा कि उसे देख कर बड़े-बड़े वन अधिकारी वन्य-प्राणियों की तरह चिंघाड़ने लगे। वहाँ के मैनेजर का टिकना मुश्किल हो गया। जैसे ही कोई मैनेजर वहाँ तैनात होता, पहली नीलामी के बाद ही उसका दफ्तर ऊँचे हाकिमों के बधाई-पत्रों से पट जाता, वनमंत्री 'योग्य अफसरों को प्रोत्साहन और निकम्मे अफसरों का सत्यानाश' की नई नीति के अंतर्गत उसे पुरस्कार देने की घोषणा करते और कुछ ही दिनों में तरक्की के साथ उसका तबादला कर दिया जाता। उमरावनगर के मैनेजर का पद इस प्रकार एक से एक घिनौने और नाकरा अफसरों की तरक्की की गारंटी बन गया। पर यह सब इकबाल मियाँ उर्फ ठेकेदार साहब की दरियादिली का फल था - यह और बात है कि दरिया में फल नहीं लगता।

सड़क के किनारे जहाँ ठाकुर साहब के बहादुरों की आधुनिक दुकानें खत्म होती थीं, लकड़ी की चिराई के लिए आरा मशीनें और दरवाजा, खिड़की, चौखट आदि के निर्माण के तीन-चार नए कारखाने खुल गए थे। यह ठेकेदार साहब के आदमियों के थे। इनका प्रमुख व्यवसाय कायाकल्प का था। जी नहीं, ये ब्यूटी पार्लर-जैसी चीज नहीं थे। ये सिर्फ जंगल में चोरी से काटी हुई लकड़ी का कायाकल्प करके उसे नीलाम में खरीदी लकड़ी की हैसियत दे देते थे। कैसे? लकड़ी के बड़े-बड़े कुंदों को यह कारखाने पटरों, चौखटों दरवाजों, खिड़कियों आदि में बदल देते थे। फिर ट्रक पर जब यह सारा माल लद जाता तो, जैसे बाजार में बिकने वाले मसाले के पैकेट में पिसी धनिया के बीच घोड़े की सूखी लीद की पहचान नहीं हो सकती, यह जानना असंभव होता कि कौन लकड़ी चोरी की है और कौन सरकारी नीलामी की। ट्रक पर जाने वाली लकड़ी के कुंदों की तो रोक-टोक हो सकती थी, पर इन पैकेटों पर कोई पाबंदी मुमकिन न थी।

इसीलिए ठेकेदार साहब वन-प्रभाग की नीलामी में सरकारी लकड़ी पर ऊँची-से-ऊँची बोली लगाते। वह लकड़ी उन्हें हर हालत में लेनी थी। उनके कारखाने में पहुँच कर उसकी हैसियत वही हो जाती जो उद्योगों के लिए कर्ज लेने में 'मार्जिन मनी' की होती है। इस लकड़ी के सहारे वे उससे नौ गुना वजन और आयतन तक की लकड़ी को जंगल के चोर-बाजार से दो मुश्त खाक-नुमा दरों पर खींच कर 'मेसर्स इकबाल हुसेन एंड ब्रोज, गवर्नमेंट क्रान्ट्रैक्टर ऐंड टिंबर मर्चेंट' की फर्म चमका रहे थे। जब तक उनकी आखिरी बोली के राकेट पर चढ़े हुए वन अधिकारी आपस में बधाइयाँ बाँटते तब तक जंगल का दूसरा टुकड़ा कट कर सीधे इन कारखानों में पहुँच जाता। वन-प्रभाग की समृद्धि का ग्राफ ऊपर उठते हुए जितना ही चमकता, उसी अनुपात से प्रभाग के पेंदे का सुराख चौड़ा होता जाता। पर अच्छाई यह है कि गतिशील अर्थ-व्यवस्था में सिर्फ ग्राफ देखा जाता है, पलट कर पेंदा नहीं देखा जाता।

राष्ट्र निर्माण में ऊठाईगीरी की भूमिका मित्र के मकान तक पहुँचने वाली गली इतनी संकरी थी कि अगर कोई औरत मर्द आमने-सामने से निकल जाते तो इतने पर ही एक का बलात्कार, या दोनों का व्यभिचार के जुर्म में

चालान हो सकता था। इस वक्त तो वहाँ कचरे और कीचड़ के पैबंद भी छितरे हुए थे। जैसे वे बिजली के नंगे तार हों, इस तरह उनको बचाते हुए मेरे मित्र दीवार के सहारे फुदक-फुदक कर सड़क तक आए, पीछे-पीछे मैं। हम लोग इकबाल मियाँ उर्फ ठेकेदार साहब उर्फ सत्ता पार्टी के स्थानीय अध्यक्ष की दावत खाने जा रहे थे। हम लोग आमंत्रण की पहली सूची में न थे, प्रदेश के वित्तमंत्री की सिफारिश पर बाद में शामिल किए गए थे।

कंप्यूटर प्रशिक्षण आज खत्म हो गया था। वित्तमंत्री समापन भाषण देने आए थे। जलसे के मुख्य अतिथि थे राज्य मंत्री, प्रशासनिक सुधार और कोई ऐसा ही वैसा विभाग। कर्ता-धर्ता : बी.डी.ओ. साहब, दावत का मैदान : कोठी नंबर तीन का अहाता। दावत के प्रमुख आकर्षण : बकरा, मुर्गा, मछली। फिर मनोरंजन कार्यक्रम में ग्राम-गीत, बिरहा का प्रमुख विषय : बीस-सूत्री कार्यक्रम की गौरव-गाथा, रा-जी-ई-ई-वा-आ भइया का दीन-दुखियों से तीन पीढ़ी का लगाव।

इधर जंगल के किनारे कुछ आदिवासी बसे हैं। बकरियों और मुर्गियों की आपूर्ति उनकी झोंपड़ियों से होती है। उस तरफ, जहाँ बहुत दूर पेड़ों के झुरमुट के पास एक छुद्र नदी बहती है, धीवरों के घर हैं। वहाँ से मछली आती है। ये चीजें इस इलाके में इफरात से मिलती है। नदी के किनारे चुवाई हुई कच्ची दारु भी। मछली या मुर्गा खरीदने पर दारु किफायती दर से मिल जाती है। कुल मिला कर खाने-पीने की सुविधा है, बशर्ते कि दाम देने का बूता हो। वह ठेकेदार साहब में है ही।

वित्तमंत्री भारतीय पत्रकारिता को गैरजिम्मेदार और ओछी मानने के लिए मशहूर हैं। पर 'पाप को घृणा करो, पापी को नहीं' का सिद्धांत मान कर पत्रकारों को वे प्यार करते हैं। पत्रकारों में भी पत्रों के मुख्य संपादक और रिर्पोटर उनके प्यार और सत्कार के घड़े से छक कर पी सकते हैं। उप-संपादकों और दूसरे डेस्क अफसरों के लिए सिर्फ तलछट बचती है।

वैसे तो मैं इसी तलछट सूँघनेवाली श्रेणी का था, पर वित्तमंत्री मुझे जानते थे। इसीलिए आमंत्रितों की पुनर्विचारित सूची में मुझे और मेरे मित्र को जगह मिल गई। पर दावत में मैंने पाया, पूरे मजमे में अकेला गैरसरकारी पत्रकार होने के नाते मैं हाशिएवाला अतिथि नहीं हूँ, मंत्री जी की मुस्कान की स्पॉटलाइट बार-बार मुझी पर पड़ रही है।

दावत और ग्राम-वाम गीत-वीत के बाद और मंत्री जी के वापस जाने के पहले थोड़ी देर हम लोग इधर-उधर की हाँकने के लिए रुके। पर इधर-उधर की हाँकने में भी मंत्री तो राष्ट्र-निर्माण, गरीबी की रेखा, ग्राम-विकास आदि की बात करेगा ही। उसी के दौरान वित्तमंत्री ने उमरावनगर के चमत्कारी विकास का जिक्र किया, उस पर मेरा अनुमोदन माँगा, यह भी बताया कि जमीन न मिल पाने के कारण जो सिंचाई परियोजना यहाँ इतने साल से अधूरी पड़ी थी वह अब शीघ्र पूरी हो जाएगी।

'तब तो उधरवाला वह बाजार जल्दी ही बन जाएगा' मैंने कहा।

'वह तो बनेगा ही। यहाँ इतना स्टाफ आ कर रहेगा कि एक बड़े आधुनिक बाजार के बिना काम नहीं चलेगा।'

'उधरवाला' बाजार मैं दो-तीन दिन पहले देख चुका था। अधूरी इमारतें पड़ी थीं, ईंट की दीवारों पर काई जमी थी। पता ही नहीं चलता था कि किसी पुरानी इमारत का खंडहर है, या नई की शुरुआत है, क्योंकि सिंचाई परियोजना चार साल पहले ठप हो गई थी। उसकी सीमेंट, लोहे और दूसरी सामग्री से गुप्ताजी नामक भट्टेवाले जितना बनवा सकते थे, बाजार का उतना भाग बनवा चुके थे। परियोजना के साथ बाजार का काम भी ठप हो गया था।

'आप तो यहाँ कई दिन से हैं, यहाँ की जोरदार प्रगति और विकास को आपने खुद देखा है। देखिए, अखबारों में हत्या, बलात्कार और रहजनी आदि पर खूब छपता है, क्या इस पर कुछ नहीं लिखा जाना चाहिए? ग्रामीण अर्थशात्र में मैं आपकी रुचि जानता हूँ। लिखेंगे न?'
वे और उनके लग्गू-भग्गू मुझे उत्साह से ताक रहे थे। मुझे कुछ सोचना नहीं था, पर सोचने का अभिनय करना

जरुरी था। कुछ रुक कर, यह देखते कि मेरे श्रोताओं में इकबाल मियाँ और ठाकुर साहब आदि भी मौजूद है, मैंने मंत्री जी से अंग्रेजी में कहा, 'लिखना तो मैं जरूर चाहूँगा पर एक सैद्धांतिक गुथ्थी का हल मैं नहीं निकाल पाया हूँ। केंद्र में आपका वित्त मंत्रालय बार-बार दोहरी अर्थव्यवस्था, काला धन, कर चोरी, गबन, धोखेधड़ी आदि के खिलाफ जिहाद बोलने की घोषणा करता है; पर छोटे पैमाने पर यहाँ का अध्ययन करके मुझे लगता है कि राष्ट्र-विकास के सरकारी प्रयासों के साथ अगर इन प्रवृत्तियों का खुले तौर से जोड़ मिल जाए तो विकास की प्रक्रिया बहुत तेज हो जाएगी। अगर सार्वजनिक कार्यक्रम में चोरी और उठाईगिरी न चलती होती तो मुझे पूरा यकीन है कि उमरावनगर में अब तक चार-छः सरकारी इदारे खुल जाने के बावजूद वह आज भी उन्हीं खपरैल की झोपड़ियों वाला गाँव बना होता और जो आज यहाँ मध्यवर्ग के अभिजात परिवार हैं, वे गरीबी की रेखा के नीचे घिसट रहे होते। ये कोठियाँ, ये कारखाने, ये समृद्ध दुकानें..।'

अचानक ठाकुर साहब कुछ बोले और मैं सन्न रह गया। उन्होंने अंग्रेजी में कहा, 'आप हम सबको चोर और उठाईगीर बता रहे हैं?'
जितनी भी रही हो, मैंने अपनी सारी शिष्टता उन पर उड़ेल दी, उन्हें ठंडा करने कि लिए अर्थशास्त्र के कुछ बड़े फिकरों का प्रयोग किया, ताकि उन्हें यकीन हो जाए कि बात गाली-गलौज की नहीं, ऊँचे सैद्धांतिक विश्लेषण की है। गलतफहमी के लिए उनसे माफी माँगी, कहा, 'जी नहीं, मैं दूसरी ही बात कर रहा हूँ। देश की राजधानी का उदाहरण लें। पिछले एशियाड में सैंकड़ों करोड़ रुपए लगा कर राजधानी का आधुनिकीकरण किया गया। उसी प्रकिया में हजारों छुटभैये, गरीबी की रेखा और निम्नवित्तीय वर्ग का बाड़ा तोड़ कर ऊपर उभर आए। उठाईगिरी से ही सही, अपनी कोठियों और बैंक लाकरों और नई मोटरों के बूते वे मध्यवर्ग में घुस चुके हैं। मैंने माना कि अगर चोरी और उठाईगिरी के तत्व सक्रिय न होते तो एक बड़ी सार्वजनिक धनराशि आपके हाथों उन्हीं के नियोजित कल्याण के काम आ सकती थी, पर उसमें वक्त लगता। यह भी तय न हो पाता कि सरकार की निगाह में उनका जो नियोजित कल्याण है, वह खुद उनकी निगाह में कल्याणकारी है या नहीं।'

वित्तमंत्री बोले, 'मजाक आप अच्छा करते हैं, पर मजाक में भी यह न भूलिए कि आज भी देश के सैंतीस फीसदी लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं। और उनका चोरी और उठाईगिरी में विश्वास नहीं है।'

मैंने कहा, 'नहीं है तो हो जाएगा। उमरावनगर से नई दिल्ली तक राष्ट्र-निर्माण के बाई-प्रोडक्ट के रूप में, मध्यवर्ग का जो एक पूरा समुदाय शुद्ध चोट्टेपन के आधार पर उभर रहा है। क्या यहाँ नदी किनारे बसने वाले मल्लाह नहीं जानते कि उनके लिए मछली–पालन के कर्ज की दलाली करके कोई भी ग्राम-विकास अधिकारी साल भर में लखपती बन सकता है।'

मैंने मंत्री जी को लगभग पुचकारते हुए कहा, 'अब मान भी जाइए। घूसखोरी, फरेब, काले धंधे आदि के खिलाफ शोर न मचा कर अब इन धंधेवालों से समन्वय कर के कुछ दिनों के लिए एक सचमुच की समन्वित ग्राम-विकास परियोजना लागू हो जाने दीजिए। फिर देखिए, विकास कैसी तेजी से होता है।'

मंत्री जी जोर से हँसे, बोले, 'आपका मस्खरापन कभी जाएगा नहीं। आप भ्रष्टाचार और चोरी के सिद्धांत पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं?'
इस बार मेरे मित्र ने पहली और अंतिम बात कही, 'जी नहीं, ऐसा नहीं है। आप लोगों की कृपा से राष्ट्र का निर्माण वास्तव में जिस तरह हो रहा है, हमारे दोस्त उसी प्रक्रिया को एक सैद्धांतिक आधार देने की कोशिश कर रहे हैं।'

कुंभीपाक से असिपत्र की जोर

लौटते में बकरियों और मुर्गों की सोहबत से बचना चाहता था। इसलिए मुँह-अँधेरे हम दोनों किसी इक्के के इंतजार में सड़क पर आ कर खड़े हो गए। ट्रान्सपोर्ट यूनियन ने रेल, सरकारी बस, टैंपो, टैक्सी आदि का जहाँ चक्का जाम किया था, वहीं इक्के वाले को टिक्-टिक् करते रहने की छूट दे रखी थी। पुरानी चीज है, अपने-आप कभी-न-

कभी सड़ कर गिर जाएगी, ऐसी ही किसी धारणा के अनुसार जैसे लोग अपने पुराने छप्पर में आग नहीं लगाते, वैसे ही उन्होंने इक्के वालों के चौपट व्यवसाय में भी हस्तक्षेप नहीं किया था।

ज्यादा देर रुकना नहीं पड़ा। धुँधलके में दूर से दिखा तो नहीं, पर इक्के का आना सुनाई जरूर पड़ा। पास आने पर मित्र ने उसे रुकने को कहा। जवाब में इक्केवाले ने घोड़े को कोड़ा लगाया, ललकारा और इक्का तेजी से सड़क पर भागा। मित्र ने 'रुको, रुको' की आवाज लगाई, हम दोनों पीछे दौड़े भी, पर वह तब भी नहीं रुका।

तब मित्र ने दहाड़ कर इक्केवाले को एक बड़ी फूहड़ गाली दी। 'रुक साले, नहीं तो...।' 'नहीं तो' जा तत्काल असर हुआ। इक्का रुक गया।
मित्र ने जवाबतलब करना शुरु किया। इक्केवाले ने बताया कि इन लल्ली ने पूरा इक्का किराए पर ले रखा है, दूसरी सवारी नहीं बैठानी है। तब बात इक्के पर बैठी लल्ली पर आ गई, जिसे संक्षिप्त करते हुए लल्ली ने इक्केवाले से कहा, 'इन्हें बैठा लो और इक्का आगे बढ़ाओ।'
इस तरह के इक्के को इधर खड़खड़ा कहते हैं। अगर इसके पहिए ठोस लकड़ी के हों और एक घोड़े की जगह दो बैल जुते हों तो इसे बैलगाड़ी भी कहा जा सकता है। मतलब यह कि उसमें दो आदमियों के फैल कर बैठने की गुंजाइश थी, यह और बात है कि लल्ली नामक सवारी, जब तक हम परिचित नहीं हो गए, बराबर सिकुड़ कर बैठी रही।

परिचित तब हुए जब कई किलोमीटर निकल जाने पर उन्होंने बुर्के का नकाब उलटा, 'इधर आसमान उलटा, उधर आफताब उलटा' वाली बात तो नहीं हुई, पर मैं वह चेहरा देखते ही अचकचा उठा। पर्दानशीन लल्ली कोई मुस्लिम महिला न थी, छँटते धुँधलके में मैंने पहचाना, वे सियादुलारी थीं।

'सियादुलारी? आप?'

सार्वजनिक सभाओं में संभाषण के अभ्यास से उन्होंने संक्षिप्त, सधे ढंग से कहा, 'मेरा नाम फूलमती है।'

धीरे-धीरे, अंग-संचालन का कम-से-कम इस्तेमाल करते हुए, उन्होंने बुर्का उतारा। उसे कायदे से तह करके एक झोले में रख लिया। उनके जिस्म पर इस समय पीली साड़ी न थी, न कत्थई ब्लाउज था। वे नाइलॉन की छापेदार साड़ी पहने थीं। साँवले रंग पर एकदम तो नहीं जम रही थी, पर उनकी उम्र में बुरी भी नहीं लग रही थी।

मेरे दिमाग में कई सवाल थे, पर पूछने को एक भी न था। जवाब उन्होंने ही शुरु किया, 'बड़ा घिनौना आदमी है।'

यह दिखाने को कि मैं समझ रहा हूँ, मैंने सिर हिलाया। वे बोली, 'आप बाहरी आदमी हैं, इसलिए आपसे कहने में कोई हर्ज नहीं। तीन किलोमीटर आगे चौराहा आएगा, वहाँ उमिरिया से शहर जानेवाली बसें मिलती हैं। हमें पहली बस मिल जाएगी।'

'मैं भी उसी से शहर जा रहा हूँ।'

'आप उससे मत जाइएगा। वहीं रुके रहिए। बाद वाली बस से जाइए।'

इक्केवाले ने कहा, 'तुम चौराहे के पहले ही उतर जाना बाबूजी। कोई तुम्हें इनके साथ देखे, उससे फायदा क्या है?'

'नुकसान ही क्या है।'

फूलमती ने कहा, 'तब ठाकुर साहब और स्वामी जी महाराज के चेले मास्टर साहब को तंग करेंगे। समझेंगे, मैं आप दोनों के कहने पर वहाँ से भागी हूँ।'

'आप भाग रही हैं?'

इसका उन्होंने तुरंत कोई जवाब नहीं दिया। इक्केवाला बोला, 'इनके बापू शहर में बीमार पड़े हैं। उनका और कोई नहीं है। स्वामी जी महाराज इन्हें वहाँ जाने नहीं देना चाहते।'

'जिलेदार साहब अभी जिंदा हैं?'

यह बेवकूफी भरा सवाल था। पर मेरे लिए एक बड़ा स्वाभाविक था। उनकी पुरानी कथाएँ, एक मल्लाह बेवा से उनके नाते-रिश्ते सुनते-सुनते मैं उन्हें इतिहास पुरुष मान बैठा था।

फूलमती ने तमक कर कहा, 'जिंदा नहीं तो क्या मर गए?' आप यही चाहते हैं?

क्षमायाचना में मैंने सिर नीचा कर लिया। उन्होंने सहज बन कर कहा, 'बापू शहर में रहने लगे थे। मैं भी वहीं पढ़ती थी। अम्मा उमरावनगर में ही रही। साल-भर बहुत बीमार रहीं। पेट में शूल उठा करता था, संग्रहणी, बुखार - न जाने क्या-क्या? अब बाबू को भी यही रोग लगा है।'

कुछ कहना था, इसलिए पूछा, 'तो बापू की देखरेख के लिए जा रही हैं?'

इस बार इक्केवाला भड़का, बोला, 'इन्हें जाना तो था ही। स्वामी जी महाराज इनकी जगह एक दूसरी सियादुलारी ला रहे हैं। तुमने वहाँ देखा होगा बाबूजी, एक गोरी-गोरी चमकुल सी जनाना आगे बैठी रहती हैं। स्वामी जी अब कहने लगे हैं कि 'सियादुलारी साँवले रंग की नहीं हो सकती।'

'तब स्वामी जी इन्हें जाने क्यों नहीं देना चाहते?'

'स्वामी जी हैं। अपनी लीला आप जानें।'

चौराहे के कुछ पहले ही मैं उतर गया। उतरते-उतरते पूछा, 'यहाँ कोई स्वामी जी का चेला मिला गया तो?'

'यहाँ मुझे डर नहीं है। राकेश भाई यहाँ पहले ही आ गए हैं।'

'राकेश भाई?'

'हमारी युवा पार्टी के अध्यक्ष है न जो, वही। आप नहीं जानते? बहुत बड़े युवा नेता हैं।'

चिड़ियाँ चहकने लगी थीं, पर किसी की भी चहक अब फूलमती-जैसी न थी। मैंने इक्के पर हाथ रख कर उसे रोके रक्खा, मेरी सुन्न जिज्ञासाएँ जाग उठी थीं।

'तो बापू के साथ रहते हुए आप राकेश भाई के साथ काम करेंगी?'

'पढ़ूँगी और काम करूँगी। राकेश जी भाई कहते हैं, मैं बोल बहुत अच्छा लेती हूँ। पहाड़ों पर एक युवा-कैंप लगने वाला है। राकेश भाई कहते हैं, वहाँ मुझे कैंप में अधातम पर लेक्चर देने होंगे।'

'काहे पर?'

'अधातम पर। भौतिक जगत निस्सार है न?'

उन्हें नमस्कार करके इक्के को आगे बढ़ जाने दिया। इच्छा हुई थी, एक बार आगाह करूँ, उस निस्सार भौतिक जगत व्यवस्था के बारे में समझाऊँ जिसमें एक मल्लाह बेवा एक भद्रपुरुष का आसरा पा कर भी यतीम की तरह शायद नासूर से बिना इलाज मरी है, जिसमें उसकी लड़की उससे भी ज्यादा भयानक एक सामाजिक नासूर का शिकार हो रही है। पर उसका न समय था, न मेरी उस बात का कोई श्रोता ही था। फिर भी, अब कल रात की मेरी बातचीत

का एक जवाब सवाल की शक्ल में ऊपर उभरने लगा : चोरी और उठाईगीरी की व्यवस्था कुछ दिनों के उस विकास की झलक भले ही दिखा दे जो मध्यमवर्गियों का स्वर्ग है, पर उसमें फूलमती की जगह कहाँ पर होगी?

पुराणों में कुंभीपाक मवाद और मज्जा से भरा हुआ एक नरक है, एक दूसरा नरक असिपत्र है जहाँ राह में खड़े पेड़ों पर तलवारों की पत्तियाँ होती हैं और वे पग–पग पर देह में घाव करती हैं। शरत्काल की इस सुनहरी सुबह में मेरा मन तब उसके लिए भारीपन महसूस करने लगा जिसकी राकेश भाई चौराहे पर राह देख रहे हैं, जो कुंभीपाक से छूटते ही असिपत्र की ओर बढ़ने लगी हैं। उमरावनगर का विकास चाहे वित्तमंत्री के सिद्धांतों से हो, चाहे इकबाल मियाँ की व्यवहार बुद्धि से, इन नरकों की सत्ता पर उसका कोई असर नहीं पड़ेगा। फूलमती को याद करके मुझे लगा, ये दोनों विकास-तंत्र यहीं एक साथ मुँह के बल गिरते नजर आते हैं।

शीर्ष पर जाएँ